RNP
144001 24.09.2015
5102 00036590
भारत INDIA POSTAGE ₹0.25
P686787

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 72 अंक : 26
सृष्टि संवत् 1960853116
27 सितम्बर 2015
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रु.
आजीवन : 1000 रु.
दूरभाष : 2292926, 5062726
जालन्धर

वर्ष–72, अंक : 26, 24/27 सितम्बर 2015 तदनुसार 11 आश्विन सम्वत् 2072 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

मित्र पाप से बचाता है

-ले० श्री स्वामी वेदानंद जी (दयानन्द) तीर्थ

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः।।

-ऋ० ५।६५।४

शब्दार्थ-मित्रः-सर्वस्नेही भगवान् **अंहोः+चित्**-पाप से भी (बचाकर) **क्षयाय**- निवास के लिए **उरु**-विशाल **गातुम्**-पृथिवी **आ+वनते**-देता है, हि-क्योंकि **सुमतिः**-उत्तम बुद्धि उस **प्रतूर्वतः**-अतिशीघ्रकारी **विधतः**-विधाता **मित्रस्य**-कृपालु प्रभु की देन **अस्ति**-है।

व्याख्या-भगवान् के स्नेह को इतनी सी बात से जान लेना चाहिए कि वह हमें सदा चिताता रहता है। वेद में बहुत ही सुन्दर कहा है-**'अचेतयदचितो देवो अर्यः'** (ऋ. ७।८६।७)-वह सर्वज्ञ स्वामी (मालिक) अचेतों को चिताता है। पापी को जब अपने पाप का और भगवान् के रक्षकत्व का बोध होता है और वह समझता है कि-**'मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते'** स्नेहवान् भगवान् पाप से बचाता और निवास के लिए विशाल भूमि देता है, तब वह रो-रोकर कहता है-**'क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित्'** (ऋ. ७।८८।५) वे हमारी मैत्रियां क्या हुईं, जब पहले कुटिलता रहित हम मिलकर रहते थे। पाप करके हमने अपने चिरसंगी, सदा सङ्गी का सङ्ग छोड़ दिया और पाप-पङ्क में धंस गए। जीवन तो अज्ञान के कारण पाप करने लगा, उसको पाप से ग्लानि स्वतः ही नहीं हुई, वरन् सर्वरक्षक परमात्मा ने ही उसे वह सुमति दी, जैसा कि वेद कहता है-'मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः' क्योंकि सुमति तो अति शीघ्रकारी, कृपालु विधाता की देन है।

ऋषि ने लिखा है-

''जब आत्मा मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता, व चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं परमात्मा की ओर से है।''

सच्चे मित्र का यह कार्य ही है कि मित्र को सुमति-सच्ची मति दे। परमात्मा स्वाभाविक मित्र है-

''जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र है, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता।'' स. प्र. प्रथम समुल्लास

यदि भगवान् उदासीन हो जाए तो जीवों का विशेषकर पापी जीवों का-निस्तार, उद्धार कभी न हो सके। परमात्मा का स्नेह ही पापियों की रक्षा कर रहा है। सांसारिक मित्र प्रयोजन न होने पर उदासीन या वैरी बन जाते हैं, किन्तु भगवान् तो सहज मित्र है, नैमित्तिक मित्र नहीं, अतः वह कभी उदासीन व शत्रु नहीं होता।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। हमारा हर संभव प्रयास होता है कि इस पत्रिका में उच्च कोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित कर आर्य समाज तथा महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये आम जनता तक इसका लाभ प्राप्त हो। लेकिन यह तभी संभव है जब आप सब का हमें पूरा सहयोग मिले। इसलिये आर्य मर्यादा के ग्राहकों से निवेदन है कि जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

क्रोध से उपकार

ले० मृदुला अग्रवाल, 19-सी सरत बोस रोड, कोलकाता

''क्रोधात् भवति संमोह संमोहात्स्मृतिविभ्रम:।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धि-नाशात्प्रणश्चयति।।''

-गीता, अध्याय-2, श्लोक-63

हम सभी जानते हैं कि ''क्रोध'' से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है। अविवेक से स्मरणशक्ति भ्रमित होती है। स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि व ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है। बुद्धि के नाश होने से वह पुरुष अपने श्रेय-साधन से गिर जाता है।

जब पुरुष विषयों का चिन्तन करने लगा है तो विषयों में आसक्ति और आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है। कामना में विघ्न पड़ने पर ही ''क्रोध'' उत्पन्न होता है।

''नमस्ते रूद्र मन्वय उतो त इषवे नम:। बाहुभ्यामुत ते नभ:।।''

-यजुर्वेद, अध्याय-16, मन्त्र-1

हे रूद्र! तेरे ''क्रोधयुक्त वीरपुरुष'' को मैं नमस्कार करता हूं। तुम्हारे भयानक रूप को मैं प्रणाम करता हूं। तेरी वज्र रूप भुजाओं को, जिससे तू शत्रुओं का संहार करता है, उसे नमस्कार करता हूं।

उस क्रोधयुक्त पुरुष से, जो दुष्टों के लिए भय और श्रेष्ठों के लिए सुखकारी है, हम विनती करते हैं कि आप शिक्षक बनकर हमको धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें एवं पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में प्रवृत्त करें।

''एको बहूनामसि मन्यवीडितो विशंविशं युधये सं शिशाधि।

अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे।।''

-ऋग्वेद, मंडल-10, सूक्त-54, मन्त्र-4

यह (मन्यु) क्रोध अकेला है अहुतों में प्रशंसनीय है। प्रत्येक प्रजा को युद्ध के लिए प्रेरित करता है। अविनाशी कान्ति वाले हम उससे युक्त हुए विजय के लिए दीप्तिमान घोषणा को करते हैं।

युद्ध में ईश्वर-स्तुति से साहस बढ़ता है। अभिमान नहीं आता, बल मिलता है। महाभारत के उद्योग-पर्व में बनवास के समय युधिष्ठिर युद्ध से विराम चाहता है, जिससे कौरवों को क्षति न पहुंचे परन्तु कुन्ती और द्रौपदी ने अपने 'क्रोध' को प्रगट करते हुए युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उकसाया, प्रेरित किया। यहां 'क्रोध' पाण्डवों का एवं समाज का हितकारी हो गया।

''क्रोध'' अगर 'हितकारी' हो तो ''मन्यु'' हो जाता है। मनन करने योग्य हो जाता है। आत्मदीप्ति और अन्याय के प्रतिकार की भावना को ''मन्यु'' कहा जाता है। मन्यु का अर्थ क्रोध एवं अहंकार ही होता है। क्रोध में उग्रता ज्यादा होती है एवं बुद्धि नष्ट हो जाती है। मन्यु में उग्रता थोड़ी कम और बुद्धि की जागरूकता रहती है।

आचार्य अपने छात्रों पर, गुरू अपने शिष्यों पर, माता-पिता अपनी सन्तानों पर, उन्हीं के कल्याण के लिए अगर क्रोध करें तो, यह क्रोध उपकारी ही होता है।

क्रोध गलत की भर्त्सना करता है एवं सही को प्रश्रय देता है। किसी भी अनुचित कार्यों को दण्डित करना आवश्यक होता है, क्योंकि दण्ड से भय पाकर ही मनुष्य सुधरता है, जो कि क्रोध से सम्भव है। हम किसी को कष्ट नहीं देना चाहते, परन्तु समाज एवं राष्ट्र की प्रगति और सुधार के लिए यह ज़रूरी भी है।

किसी संगठन व संस्था के प्रशासन में किसी निर्बल कर्मचारी की रक्षा करना हो या किसी के विरुद्ध कार्यवाही करनी हो तो, क्रोध ही इसका निवारण कर सकता है।

'क्रोध' से जो मानसिक-तनाव उत्पन्न होता है, उससे "Adrenalin" नाम का एक रसायन मानव शरीर में तैयार होता है। क्रोध अगर सकारात्मक है तो यह रसायन काम में आता है। उसे "Eustress" कहते हैं। क्रोध कुछ भी उपकार करता हुआ वहीं समाप्त हो जाता है। अगर 'क्रोध' नकारात्मक है। तब वह "Distress" (मानसिक वेदना) बन जाता है, जो कि मनुष्य को क्षति पहुंचाता है और वह बीमार हो जाता है। दिल का दौरा एवं उच्च रक्तचाप होने की सम्भावना होती है।

क्रोध जब सकारात्मक रहता है तो वह नए-नए विचारों को प्रेरित करता है। नई योजनाओं का सृजन कर समृद्धि-सम्पन्नता की ओर प्रवृत्त करता है। क्रोध परिवर्तन को प्रोत्साहन देता है जो समाज में अच्छाई लाने के लिए ज़रूरी है। अथर्ववेद, चतुर्थ काण्ड, सूक्त 31 एवं 32 तथा ऋग्वेद, मंडल-10, सूक्त-53 एवं 54 में क्रोध (मन्यु) का विस्तृत वर्णन है, जिसके अनुसार युद्ध और संग्राम में उग्र भाव एवं क्रोध से भरा हुआ सामर्थ्यवान्, बलवान्, शत्रुओं का विनाश करने वाला व्यक्ति समाज को धनी एवं ऐश्वर्यवान् बनाने का कार्य करता है। ईश्वर की न्यायकारिणी शक्ति और तेजोमय उग्रशक्ति की स्तुति की गई है। विजय रूप, चल और अचल सम्पत्ति हमें प्राप्त हो। भगवान की वरुण और मन्युशक्ति हमारे साथ हो।

''मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा:।

मन्युर्विश ईडते मानुषीर्या: पाहि नो मन्यो तपसा सजोषा:।।''

-अथर्ववेद, काण्ड-4, सूक्त-32, मन्त्र-2 एवं ऋग्वेद, मंडल-10, सूक्त-53, मन्त्र-2

पदार्थ-(मन्यु) हे प्रकाशमान क्रोध! (इन्द्र:) ऐश्वर्यवान् (मन्यु:) क्रोध (होता) दाता वा ग्रहीता, (वरुण:) वरणीय अंगीकारयोग्य और (जावेदा:) धन प्राप्त कराने वाला (आस) हुआ है। (मन्यु:) क्रोध को (या:) उद्योग (मन्यो) हे क्रोध! (तपसा) ऐश्वर्य से (सजोषा:) प्रीति करता हुआ तू (न:) हमें (पाहि) बचा।

'क्रोध' (मन्यु) सब पदार्थों में विद्यमान प्रदीप्त अग्नि है जो जलकर भस्म भी करती है, ध्वंस करती है और भोजन भी पकाती है। यहां क्रोध अपकार भी करता है और उपकार भी। समस्त मनुष्यों में किसी न किसी मात्रा में क्रोध विद्यमान रहता है। सहनशक्ति से युक्त संग्रामों में ओज धारण करता है। 'क्रोध' संतुष्ट मन का होता है, नीच वचन नहीं बोलता, शक्तिमान है, हिंसक लोगों को इधर-उधर फेंकने वाला है, अभिमानी शत्रु को दबा देता है, बैरियों को तोड़ता-फोड़ता कुचलता-मारता है। उसके उग्र बल को कोई रोक नहीं पाता। यह क्रोध परमात्मा द्वारा उत्पन्न बलवान् है, जो अकेला ही शत्रुओं को वश में कर लेता है। क्रोध दीप्तिमान है-जिस पर कृपा करता है उसे शरीरबल से और समाज बल से पुष्ट करता है। वह अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने वाला है, पीड़ा देने वालों को एवं डाकुओं को मारने वाला है। हे वज्ररूप क्रोध! हे शत्रुनाशक! बुराइयों का विध्वंसक, हम मनुष्य तुम्हारा सम्मान करते हैं। वह ज्ञान विचार से युक्त होता है। क्रोध, ईश्वरीय तेज से युक्त, सज्जनों की रक्षा करता है और दुष्टों की ताड़ना करके न्याय करता है। वह देवरूप है। अनाचार, अन्याय आदि से देवता भी क्रुद्ध होते हैं। जैसे, श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के 100 अपराधों को क्षमा कर दिया, परन्तु जब शिशुपाल ने अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ा तो क्रोधित होकर श्रीकृष्ण ने उसका वध कर दिया। मनुष्यों को क्या देवताओं को भी समाज व राष्ट्र के हित के लिए क्रोध का सहारा लेना पड़ता है।

परमेश्वर 'क्रोध' को हमारे लिए प्रगट करता है एवं उसे हमारे जीवन के लिए उपयोगी भी बनाता है। हम उस परमेश्वर को कोटि-कोटि नमस्कार करते हैं। हम भक्त अपने भगवान से भावभरी करुण पुकार में कहते हैं कि सर्वज्ञ प्रभो! मन के षट्-विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर) दस्यु हैं। उन्हें अपनी मन्युरूपी क्रोध से नष्ट करो। हमारी सहायता करो। हमें ब्रह्मनन्द की अनुभूति कराओ। स्वयं को प्रत्यक्ष करो।

''यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओज: पुण्यति विश्वमानुषक्।

साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता।।''

-ऋग्वेद, मडल-10, सूक्त-83, मन्त्र-1

-अथर्ववेद, काण्ड-4, सूक्त-32, मन्त्र-1

भावार्थ-''क्रोध'' भी एक अनोखा भाव है, यह राक्षस भी है यदि बिना विचार के हैं और दुष्टों के दमन के लिए प्रयोग होने पर यही ईश्वरीय तेज बन जाता है।

सम्पादकीय.....

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्राद्ध और तर्पण का स्वरूप

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के 24 वें अध्याय में पञ्चमहायज्ञ की विषय वस्तु पर प्रकाश ड़ाला है। पञ्चमहायज्ञ के ऊपर विचार करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तीसरे यज्ञ पितृयज्ञ के बारे में लिखते हैं कि- पितृयज्ञ के दो भेद हैं-एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। उनमें से जिस कर्म को करके विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं, सो तर्पण कहलाता है तथा जो उन लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करता है, उसी को श्राद्ध जानना चाहिए। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हीं में घटता है, मरे हुओं में नहीं। क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसलिए उनकी सेवा नहीं हो सकती तथा जो उनके लिए कोई पदार्थ देना चाहे, वह भी उनको नहीं मिल सकता। इससे केवल विद्यमानों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने योग्य और सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध वेदों में कहा है। क्यों सेवा करने योग्य और सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने से यह सब काम हो सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए तर्पण आदि कर्म करने योग्य तीन हैं- देव, ऋषि और पितर। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी देव और मनुष्य के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि- दो लक्षणों के पाए जाने से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं, अर्थात् एक देव और दूसरी मनुष्य। उनमें भेद होने के सत्य और झूठ दो कारण हैं। जो कोई सत्यभाषण, सत्यस्वीकार और सत्यकर्म करते हैं वे देव तथा जो झूठ बोलते, झूठ मानते और झूठ कर्म करते हैं मनुष्य कहाते हैं। इसलिए झूठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होना सबको उचित है। इस कारण से बुद्धिमान लोग निरन्तर ही सत्य कहें, मानें और करें। क्योंकि सत्यव्रत आचरण करने वाले जो देव हैं, वे तो कीर्तिमानों में भी कीर्तिमान होके सदा आनन्द में रहते हैं। परन्तु उनसे विपरीत चलने वाले मनुष्य दु:ख को प्राप्त होकर सब दिन पीड़ित ही रहते हैं। सत्यधारी विद्वान् ही देव कहलाते हैं।

जो सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाना है, यह ऋषिकर्म कहाता है और उससे जितना कि मनुष्यों पर ऋषियों का ऋण हो, उस सबकी निवृत्ति उनकी सेवा करने से होती है। इससे जो नित्य विद्यादान, ग्रहण और सेवाकर्म करना है, वही परस्पर आनन्दकारक है और यही व्यवहार अर्थात् विद्याकोष का रक्षक है। विद्या पढ़ के सभी को पढ़ाने वाले ऋषियों और देवों की प्रिय पदार्थों से सेवा करने वाला विद्वान् बहुत पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। इससे आर्षेय अर्थात् ऋषिकर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आगे लिखते हैं कि-घर का पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवें कि- जो जो हमारे मान्य पिता, पितामहादि, माता मातामहादि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग, जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं, तुम लोग उनकी उत्तम-उत्तम जल, रोग नाश करने वाले उत्तम अन्न, सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो, जिससे कि वे प्रसन्न होके तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें। क्योंकि ऐसा करने से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहोगे और ऐसा विनय सदा रखो कि हे पूर्वोक्त पितर लोगों! आप हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से तृप्त हूजिए और हम लोग जो-जो पदार्थ आप लोगों की इच्छा के अनुकूल निवेदन कर सकें, उन-उन की आज्ञा दिया कीजिए। हम लोग मन, वचन और कर्म से आप के सुख करने में स्थित हैं। आप किसी प्रकार का दु:ख न पाईए। क्योंकि जैसे आप लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे ही हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिए कि जिससे हम लोगों को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो।

पितृ शब्द से सब के रक्षक श्रेष्ठ स्वभाव वाले ज्ञानियों का ग्रहण है। क्योंकि जैसी रक्षा मनुष्यों की सुशिक्षा और विद्या से हो सकती है, वैसी किसी दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञानचक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकार के नाश करने वाले हैं, उनको पितर कहते हैं। उनके सत्कार के लिए मनुष्यमात्र को ईश्वर की यह आज्ञा है कि वे उन आते हुए पितर लोगों को देखकर अभ्युत्थान अर्थात् उठ करके प्रीतिपूर्वक कहें कि- आईए! बैठिए! कुछ जलपान कीजिए और खाने पीने की आज्ञा दीजिए। पश्चात् जो-जो बातें उपदेश करने योग्य हैं, सो सो प्रीतिपूर्वक समझाईए कि जिससे हम लोग भी सत्यविद्यायुक्त होके सब मनुष्यों के पितर कहावें। परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह से जो शीलस्वभाव और सबको सुख देने वाले विद्वान् लोग अग्नि नाम परमेश्वर और रूप गुणवाले भौतिक अग्नि की अलग-अलग करने वाली विद्युत् रूप विद्या को यथावत् जानने वाले हैं, वे इस विद्या और सेवा यज्ञ में अपनी शिक्षा विद्या के दान और प्रकाश से अत्यन्त हर्षित होके हमारी सदा रक्षा करें। उन विद्यार्थियों और सेवकों के लिए भी आज्ञा है कि जब जब वे आवें वा जावें, तब तब उनको उत्थान नमस्कार और प्रियवचन आदि से सन्तुष्ट रखें तथा फिर वे लोग भी अपने सत्यभाषण से निर्वैरता और अनुग्रह आदि सद्गुणों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को उसी मार्ग में चलावें और लोभादि रहित होकर परोपकार के अर्थ अपना सत्य व्यवहार रखें। इस भेद से विद्वानों के दो मार्ग होते हैं-एक देवयान और दूसरा पितृयान। अर्थात् जो विद्यामार्ग है वह देवयान और जो कर्मोपासना मार्ग है वह पितृयान कहाता है। सब लोग इन दोनों प्रकार के पुरूषार्थ को सदा करते रहें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने पितृ यज्ञ के अन्तर्गत श्राद्ध और तर्पण पर प्रकाश ड़ाला है क्योंकि हिन्दू समाज में श्राद्ध और तर्पण के नाम से भोली भाली जनता को लूटा जाता है। श्राद्ध और तर्पण के नाम पर बहुत सा पाखण्ड़ फैला हुआ है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लोगों को बताया कि श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप क्या है? वर्तमान समय में भी श्राद्ध के नाम पर बहुत सी भ्रांतियां लोगों के मन में हैं। महर्षि दयानन्द जी के अनुसार केवल जीवित माता पिता का ही श्राद्ध हो सकता है। इसलिए हमें मन से इस भ्रांति को निकाल देना चाहिए कि मरे हुए पितरों के नाम पर भोजन कराने से उन्हें तृप्ति मिलेगी। यह पाखण्ड़ है जिसके नाम पर लोगों को लूटा जाता है। जीवित माता-पिता की श्रद्धापूर्वक सेवा करने से उनका आशीर्वाद मिलता है। इसलिए श्राद्ध के सही स्वरूप को समझकर माता-पिता, गुरू-आचार्यों, विद्वान् सन्यासियों, महात्माओं की सेवा करें और उनके द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों को जीवन में धारण करें। यही श्राद्ध और तर्पण का वास्तविक स्वरूप है।

-प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

और सूरज डूब गया

-ले० श्री आचार्य महावीर सिंह अध्यक्ष दयानन्द मठ, चम्बा

प्रियजनों कमान से निकला तीर, जुबान से निकली वाणी, गया हुआ समय जिस प्रकार कभी वापिस नहीं लौटते ठीक उसी प्रकार से अस्ताचल पर्वत पर आरूढ़ भगवान भास्कर भी वापिस नहीं लौटता, अत: उसे अस्त होना ही है, यह सुनिश्चित है। यह बात अलग है कि नया सवेरा होगा और सूर्य पुन: उदित होगा पर इतने अंतराल में अंधेरा तो आ गया। भयानक गहन रात्रि तो उपस्थित हो गई। पूज्य स्वामी जी महाराज के जीवन रूपी सूर्य ने भी अस्ताचल पर्वत का अवलम्बन कर लिया था। यानि उस अवस्था को प्राप्त कर लिया था जहां से फिर वापिस लौटना मुश्किल था। अत: उनके जीवन रूपी सूर्य ने डूबना ही था वह डूब गया। 05.8.2015 को रात्रि के पौने दस बजे वे हम सबको छोड़कर चले गए। हमारी आंखों से हमेशा-हमाशे के लिए ओझल हो गए। हमारे हृदयों में तो उनका अक्ष उनकी स्मृति जीवन पर्यन्त बनी रहेगी। समुद्रतुल्य अंतस्थल से उठने वाले उनकी स्मृतियों रूपी उन्नत तरंगों के वाष्पों को प्रवाहित होने के लिए पमुचित स्थान मिले। इसलिए व अब आंखों के विषय नहीं रहे। यह आंखें उन्हें अब कभी नहीं देख पाएंगी। हां उनकी याद में सजल तो रहेगी। मुक्ताकणों को लुढ़काती तो रहेंगी। अंधेरे में उन्हें टटोलती रहेगी, खोजती रहेगी पर अपने मनोरथ में कभी सफल नहीं होगी। प्यासा हिरण मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता जाता है, भागता जाता है। जिसे वह जल समझ पाने के लिए दौड़ता जा रहा है वह जल तो है नहीं वह तो मृगतृष्णा है। नादान हिरण भागता-भागता थक जाता है, टूट जाता है, प्यास बुझने की बजाय बढ़ती चली जाती है। पानी ने मिलना नहीं था सो नहीं मिला। ठीक इसी प्रकार हमारी आंखों में स्वामी जी को देखने की जो प्यास है अब कभी नहीं बुझ पाएगी। उनके कदमों की चाप अब कभी नहीं सुनाई देगी। स्वामी जी आ रहे हैं, का यह भ्रम अब कभी दूर नहीं हो पाएगा। गीतकार का इसी प्रकार से सम्बन्धित कितना सुन्दर गीत है-

कौन आएगा इधर जिस की
बाट जौहे हम
जिनकी आहटें सुने जाने किसके
थे कदम।

प्रिय ऋषि के चले जाने के बाद रात्रि को सोते समय जब उसकी याद आती तो पूज्य चरण-पूज्य स्वामी जी इसी पंक्ति को गुणगुनाकर मौन हो जाते, अन्नत में खो जाते थे। सम्भवत: उसकी प्रतीक्षा करते-करते थक जाते थे और प्रतीक्षा नहीं कर पाए और उसकी जुदाई को सहन नहीं कर पाए इसीलिए उसके पास चले गए। उन दिव्य लोकों में चले गए जहां उनका प्यारा, हम सबकी आंखों का तारा उनके स्वागत के लिए दिव्यजनों के साथ खड़ा था। हम लोग भी शारद यज्ञ भव्यातम तरीके से उनके सामने सम्पन्न कर उन्हें संतृप्त कर यहां से विदा करना चाहते थे। इसीलिए आओ श्राद्ध व तर्पण करें शीर्षक से एक शारद यज्ञ सम्बन्धी पत्र मैंने आप सभी को संप्रेषित किया था। पूज्य स्वामी जी उस शारद यज्ञ की भी प्रतीक्षा नहीं कर पाए। सम्भवत: उन्हें विश्वास हो गया था कि मेरे द्वारा आरंभ किए मेरे कार्यों को मेरे आत्मीयजन बखूबी आगे बढ़ाएंगे। इस शारद यज्ञ को भी पूर्ववत जारी रखेंगे। इसीलिए वे उससे पूर्व ही चले गए। उन दिव्यलोकों को चले गए जहां पर दिव्यात्माएं निवास करती हैं। जहां से दिव्यात्माएं इस लोक में आती तो हैं पर वहीं पर आती हैं, जहां पर उनके लिए अनुकूल वातावरण हो। अनुकूल माहौल हो, जहां पर उन्हें दिव्य रस और दिव्य गंध के रूप में भोग उपस्थित किए जा रहे हों। जिन्हें ग्रहण करके उनके अनुकूल वातावरण व भोज्य का सृजन करने वालों को अपने अमोघ आशीर्वादों से अभिसिंचित कर आप्लावित कर, भरपूर कर पुन: उन दिव्यलोकों को चले जाते हैं जहां से अपने प्रियजनों पर नज़रें गड़ाए रखते हैं और उनके रोग, शोक, ताप-संताप को दूर कर उन्हें हर प्रकार के सुख-सौभाग्यों से भरपूर करते हैं।

प्रियजनों आना-जाना तो संसार का ध्रुव सत्य है। गीता में श्री कृष्ण जी कहते हैं-

जातस्य हि ध्रुवोमृत्यु: ध्रुवं जन्म
मृतस्य च

अर्थात् जो संसार में आया है उसे तो जाना ही है। चाहे राजा हो या रंक हो, गृहस्थी हो या साधु हो, बालक हो या बूढ़ा हो, स्त्री हो या पुरुष हो। इस नियम से सब बंधे हुए हैं। इसीलिए समय आ गया था स्वामी जी भी चले गए।

हमारा कर्त्तव्य-पूज्य चरणों के जाने के बाद हमारा, उनके अनुयायियों का, उनके प्रियजनों का उनसे प्रीति रखने वालों का कर्त्तव्य है कि उनके प्रिय कार्यों को जारी रखें। उनके अनुसार आचरण व व्यवहार करें। जिनसे उन्हें संतुष्टि हो उसकी तृप्ति हो। मनु जी महाराज ने आदेश दिया है-

तयोर्नित्यम् प्रियम् कुर्याद
आचार्यस्य च सर्वदा
तेषु त्रिषुण तुष्टेषु:
तप: सर्वं समाप्यते

अर्थात्-माता-पिता व आचार्य का प्रिय करने में हमेशा ही तत्पर रहें। लेकिन आचार्य का प्रिय यानि आचार्य को जो अत्याधिक प्रिय हो ऐसे कार्य को करने में हर समय तैयार रहना चाहिए। मनु जी के इस आदेश को मानते हुए अब हम पूज्य चरणों का क्या प्रिय कार्य करें, कौन सा कार्य उन्हें प्रिय था। इसका उत्तर है यज्ञ कार्य उन्हें प्रिय थे। उन्हीं यज्ञों को कर हम उनका प्रिय कार्य करें।

दुर्लभ शारद यज्ञ-प्रियजनों वर्तमान में उपस्थित परिस्थितिवश कुछ हितैशी जन दुर्लभ शारद यज्ञ को विराम देने के लिए कह रहे हैं। इस वर्ष स्थगित करने को कह रहे हैं पर मेरा मन नहीं मान रहा है। पूज्य चरण इसे हर परिस्थिति में जारी रखे हुए थे। हमें भी इसे जारी रखना है। दिवंगत आत्माओं का तर्पण भी तो करना है। क्या उन्हें भूखे ही रहना है, अतृप्त ही रखना है। नहीं, नहीं उन्हें हमने तृप्त करना है, सन्तुष्ट करना है और वह इन यज्ञों से ही संभव है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं-

यज्ञे तपसि दाने च स्थिति:
सदिति चोच्यते
कर्मचैवतदर्थीयं सदित्येना-
भिधयिते।।

यज्ञ, तप और दान इन तीनों कर्मों को करने की जो प्रवृत्ति है वह श्रेष्ठ प्रकृति है। ईश्वर के प्रति अपने आपको समर्पित करने की प्रवृत्ति है। परमात्मा के प्रति समर्पित होकर किया गया कर्म भी श्रेष्ठ है।

अत: यह कर्म भी श्रेष्ठ हैं इसे अवश्य करना चाहिए। आगे श्री कृष्ण जी कहते हैं-

यज्ञ, दान, तप: कर्म न त्याज्यम्
कार्यमेवतत्।
यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि
मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान और तप इन तीनों कर्मों को मनुष्य को चाहिए कि कभी न छोड़े। इन्हें निरन्तर करे क्योंकि यह तीनों कर्म मनुष्य को पूत और पवित्र करने वाले हैं। अत: मेरे प्रियजनों आओ हम सब मिलकर पूज्य स्वामी जी महाराज के द्वारा आरम्भ किए गए इस शारद यज्ञ का अनुष्ठान जारी रखते हुए जहां पूत और पवित्र बने वही पूज्य चरणों का तर्पण भी करें और दिव्यात्माओं को भी तृप्त करें। इससे बड़ा उत्तम कर्म इससे अच्छा श्रेष्ठ कर्म और क्या हो सकता है जिसके करने से इहलोक में समस्त प्राणियों का कल्याण हो और परलोक में दिव्य लोकों में निवास करने वाले देवजन, पितृजन व समस्त मुक्त आत्माओं का भी तर्पण हो, तृप्ति हो। जल का शोधन हो, वायु पूत और पवित्र हो। इस कर्म को छोड़ना नहीं चाहिए। प्रियजनों आओ हम सब मिलकर इसे सम्पन्न करें। मिलकर कार्य करने में जो आनन्द मिलता है वह अकेले करने में नहीं मिलता। वेद आदेश देता है-

"सह नौ अवतु सह नौ भुनक्तु,
सहवीर्यं करवावहे
तेजस्वीनावधीतमस्तु मा
विद्विषावहै
संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो
मनांसि जानताम्
देवाभागम् यथा पूर्वे सं
जनानामुपासते।।"

प्रिय बंधुओं साथ-साथ खाने में जो मजा है वह अकेले खाने में कहां। समूह में चलने से रास्ता आसान हो जाता है। अकेले में आसान यात्रा भी जटिल लगती है। समूह में बोलने पर नदी-नाले, वन-उपवन, पर्वत सब हिल जाते हैं। एक अकेले की आवाज़ पत्ते को भी नहीं हिला सकती। वेद भगवान आदेश देते हैं। सहस्त्रं साकमर्चत-हे मनुष्यों तुम सहस्त्रों-सहस्त्रों जन मिलकर पूजा करो यागादि कर्मों को करो।

अधिकस्यधिकम् फलम् जितने अधिक लोग मिलकर इन कर्मों को करेंगे उतना अधिक लाभ प्राप्त होगा। इसीलिए मैं आप सबका आहवान करता हूं हे प्रियजनों आओ इस यज्ञ में भाग लो।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

यज्ञ रूप प्रभु हमारे

ले० आचार्य भद्रसेन बी-2, 92/7, शालीमार नगर, होशियारपुर

आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में अपने प्राचार्य, प्राध्यापकों के साथ पर्याप्त संख्या में छात्र-छात्राएं आई हुई थीं। इन नवागन्तुक को देखकर सन्ध्या, ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना और स्वस्तिवाचन के मन्त्र पाठ के पश्चात् आचमन से पूर्व मैंने कहा-देखिए! हमने मिलकर पहले सन्ध्या की, जिसका एक सीधा सा अर्थ है-अच्छी तरह से ध्यान करना, प्रभु से जुड़ना। उसके बाद के मन्त्रों में ईश्वर का वर्णन, स्वरूप समझाया, उसमें प्रार्थनाएं और उसकी भक्ति की बात थी। आगे स्वस्तिवाचन में स्वस्ति शब्द वाले मन्त्र बोले गए। स्वस्ति का अर्थ है-कल्याण, भला, अच्छा अर्थात् सु-अच्छी, अस्ति-स्थिति। हर स्थान, समय, आयु का व्यक्ति अपना भला ही चाहता है। वह चाहना किस-किस रूप में होती है ? किस-किस से कैसे होती है? यह सारा चित्रण इन मन्त्रों में आया है। अब आचमन-जल का पान होगा, यतो हि हम धार्मिक कर्म कर रहे हैं, हर ऐसा कर्म पवित्र भावना से पवित्र होकर किया जाता है। हमारे व्यवहार में पवित्रता का साधन रूप सबसे सुलभ जल है। अत: पवित्रता की प्रेरणा लेने के लिए हम आचमन करते हैं और इससे आगे अग्नि जलाकर उस में समिधा, घृत, हवन सामग्री की क्रमश: आहुतियां देंगे। जैसे आजकल हम कभी अंगारों पर भूनकर शक्करकन्दी खाते हैं और कभी जल में उबाल कर और कभी रेत में भुनी हुई खाते हैं और किसी मौसम में ऐसे ही छल्लियां-मक्की के भुट्टे खाते हैं। इनका अपना-अपना स्वाद अलग-अलग होता है, क्योंकि अग्नि से सम्पर्क अलग-अलग ढंग से होता है। ऐसे ही यज्ञ हवन में आहुति रूप में दिए गए रोगनाशक सुगन्धि प्रसारक पौष्टिक मिष्ट पदार्थों को अग्नि सूक्ष्म बना कर वायु में फैला देती है। अत: इससे जल-वायु आदि की शुद्धि होती है। वैसे इसका सबसे अच्छा उदाहरण दाल या सब्जी में दिया जाने वाला छौंक है, जिससे स्वाद, रूप, गुण में कितना अन्तर आ जाता है। यह हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं।

यज्ञ और प्रार्थना के पश्चात् सभी आगन्तुक यज्ञशाला से हाल में आकर बैठ गए। तब सर्वप्रथम प्रभु भक्ति का एक मधुर भजन हुआ। मैं आर्य समाज की ओर से आप सभी का स्वागत, अभिनन्दन करता हूं। आप सब अनेक बार भगवान के घर कहलाने वाले धर्मस्थलों पर जाते रहते हैं। कहीं किसी प्रकार के रूप, आकार के प्रतिष्ठित देव को देखते हैं और कहीं किसी और प्रकार के। मेरी तरह आप भी साईंस से जुड़े हुए विद्यार्थी हैं। विज्ञान वाले जब किसी वस्तु को देखते हैं, तो उसको गहराई से समझने का यत्न करते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार अनेक प्रश्न भी उभरते हैं। वैसी ही इस समय मेरी कुछ स्थिति है, हो सकता है आपके मन में भी यह बात उठती हो क्योंकि यज्ञ के अन्तिम भाग में गाया जा रहा था-यज्ञ रूप प्रभु हमारे, भाव उज्जवल कीजिए। क्या जो अभी यज्ञ किया गया, उसी रूप वाला, वैसा ही हमारा प्रभु है ? जैसा कि गाया जो रहा था ? हां, यह ध्यान रहे, कि यज्ञ प्रक्रिया से साईंस के नियम के अनुसार ऐसे-ऐसे परिवर्तित-परिणत होते हुए सुगन्धि होती है, फैलती है। अतएव यज्ञ को जल-वायु आदि। पदार्थों का शोधक भी कहा जाता है। यहां सबसे पहले यह ध्यान देने वाली बात है, कि प्रश्न में उभरा शब्द वेद से आया है। वैसे भी यहां सारा यज्ञ का कार्यक्रम वेद के मन्त्रों से ही हुआ है, अत: पहले वेद पर कुछ विचार करते हैं।

वेद-विचार-वेद का अर्थ है-ज्ञान, समझ और हमारा हर कार्य, व्यवहार ज्ञान से ही हो सकता है, होता है। यन्त्र, मशीनरी का प्रयोग ज्ञान के बिना बिल्कुल भी नहीं हो सकता। हां, पशु, पक्षी तो अपने जन्म के साथ ही ज़रूरत का स्वाभाविक ज्ञान लेकर आते हैं, जैसे कि तैरने का। पर हम मनुष्य ऐसा ज्ञान लेकर नहीं आते। किसी न किसी निमित्त-सहयोगी के सहयोग से हमें ज्ञान आता है। जिसको हम गुरु, शिक्षक, टीचर आदि कहते हैं। अत: मनुष्यों का ज्ञान, समझ नैमित्तिक। निमित्त-सहायक से होने वाला है।

ज्ञान का प्रादुर्भाव-आर्य समाज तथा सारे भारतीय शास्त्रों की यह दृढ़ धारणा है कि सृष्टि के शुरू में जब मनुष्य हुए, तब उनको ज़रूरत का ज्ञान देने वाला केवल और केवल ईश्वर ही था। तभी तो योगदर्शनकार ने कहा है-स सष: पूर्वेषामपि गुरु: काले नानवच्छेदात् 1,26 अर्थात् नित्य ईश्वर ही सर्गारम्भ में ज्ञान का दाता गुरु था। ईश्वर का दिया वह ज्ञान वेद ही है। अत: इस दुनिया और वेद इन दोनों का कर्त्ता एक ही है, तभी तो इन दोनों में एकरूपता मिलता है। जैसे भूगोल और भूगोल पुस्तक में एक सा होना सच्चाई की पहचान है। इसी दृष्टि से वेद ने कहा है-देवस्य पश्य काव्यम्-अथर्व० 10, 8, 32 तभी तो जैसा हम सूर्य को देखते हैं, वैसा ही वेद में उसका वर्णन है। इन वेदों में यज्ञ के कराने का विधान है। उसी के अनुरूप ही थोड़ी देर पूर्व यज्ञ का एक रूप आप के सामने आया। वेदों में यज्ञ शब्द नामपद और क्रियापद के रूप में सैंकड़ों बार आता है और वहां यज्ञ का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

यज्ञ-शब्दार्थ-यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है। जो कि देवपूजा, संगतिकरण और दान इन तीन अर्थों वाली है। वैसे धातु का अर्थ है किसी को धारण करने वाला अर्थात् कच्चा माल, मैटर। जैसे हमारे बर्तने के पदार्थ किसी न किसी कच्चे माल से बनते हैं। उदाहरण के रूप में कच्चा माल रूपी लकड़ी आदि जिस पेड़ आदि की जैसी होती है। उससे बनने वाली चीज़ में भी वे ही गुण मिलते हैं। यही शब्दों की भी बात है, बोले जाने वाले शब्दों के बारे में शब्द-पारखी कहते हैं कि यज्ञ-जय्+न शब्द अपनी यज् धातु के अनुसार कहीं तीनों, कहीं दो और कहीं किसी एक अर्थ को अवश्य धारण करता है। देवपूजा का भाव है-दिव्य, अनोखे, प्रकाश करने वाले की पूजा-आदर, मान, सत्कार, आज्ञा पालन करना। संगतिकरण-अपेक्षित का मिलान जैसे रसोई में बनने वाली चीज़ में अपेक्षित का मिलान करते हैं। दान-देना। अभी हमने जो यज्ञ किया, उसमें यजमान-यज्ञ कराने वाले पुरोहित, ब्रह्मा आदि को मान देता है। वहां यज्ञ के पात्र, समिधा (लकड़ियां), घृत, हवन सामग्री का संगति करण-संग्रह मिलान होता है। तब समिधा, घृत, सामग्री की आहुति अग्नि मे दी जाती है। इन अर्थों के लागू होने से इस किए गए कर्म को यज्ञ कहा गया है और यह एक धार्मिक कर्म है।

हमारे दर्शनों में छठा दर्शन मीमांसा माना जाता है, जिसका अर्थ है-विचार, विश्लेषण, विवेचन करना। इसके प्रणेता जैमिनि मुनि हैं। इस का पहला सूत्र है-अथातो धर्म जिज्ञासा अर्थात् हम धर्म को जानना चाहते हैं। अगले सूत्र में उत्तर दिया है कि जो वेद कहे, वह भला करने वाला कर्म ही धर्म है। इस दर्शन के पहले अध्याय में वेद के स्वरूप का विचार है और आगे फिर सारे में यज्ञ प्रक्रिया का विस्तृत चित्रण है अर्थात् मीमांसा के अनुसार वेद में सबसे अधिक यज्ञ का वर्णन है। ऐसा अन्य अनेक शास्त्र भी मानते हैं।

अत: सामान्यत: भलाई करने वाले कर्म का नाम यज्ञ है। तभी तो यह कहा जाता है-'यज्ञो वै श्रेष्ठतम् कर्म शतपथ 1, 7, 1, 5। जैसे यह यज्ञ हवन सुगन्धि से सबका भला करता है। बहुत जगह लंगर के लिए जग शब्द चलता है। विशेषत: गांवों तथा पहाड़ों में जग शब्द बोला जाता है। (शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-यज्ञ रूप प्रभु.....

चारों वेदों में से दूसरे यजुर्वेद के नाम से भी यज् धातु का अंश है और इस वेद में सबसे अधिक यज्ञ का विस्तृत रूप मिलता है। ऋग्-यजु: अथर्व में पुरुष सूक्त। अध्याय वाले मन्त्र हैं। वहां सृष्टि प्रक्रिया को यज्ञ नाम दिया गया है। तभी तो वहां आया है-यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। बसन्तोअस्यासीदाज्यम्-ऋ० 10, 90 6, य. 31, 14 जैसे भोजन के पकवान आदि में घृत रूप, स्वाद, गुण देता है, ऐसे ही जगत रचना में बसन्त ऋतु घी की तरह योगदान देती है। तभी तो इसी ऋतु में फूल, फल आदि अधिक होते हैं। सृष्टि प्रक्रिया के यज्ञ नाम की दृष्टि से ही इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा अथर्व. 2, 35, 5 मन्त्र में चित्रण है कि विश्व कर्मा ने इस यज्ञ को परखा है और तभी तो यह कहा जा रहा है-'इयं समित् पृथ्वी द्यौद्वितीया-(अ. 11, 5, 4) अर्थात् इस सृष्टि यज्ञ की पहली समिधा पृथ्वी है और द्युलोक दूसरी आदि।

यज्ञ का विविधात्मक स्वारस्य यजुर्वेद के 18वें अध्याय के पहले मन्त्र से 29 मन्त्र तक प्राप्त होता है। वहां सभी मन्त्रों में यज्ञेन कल्पन्ताम् की टेक है। इनमें यज्ञ शब्द तृतीया-साधन, करण, औजार, इन्स्ट्रूमैंट, सहायक, साधक होने वाले के रूप मे आया है अर्थात् जिस के द्वारा कुछ हो। कल्पन्ताम् का अर्थ है-किसी को शक्तिशाली बनाना, तरोताजा करना क्योंकि यह क्लृपू सामर्थ्य धातु से सिद्ध होता है। जैसे दूध, दही, फल आदि से जब किसी का कायाकल्प करते हैं, तो वह उस ढंग से पहले की अपेक्षा सशक्त, सक्षम हो जाता है। इन 31 मन्त्रों में यज्ञ शब्द के महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर, धर्म, सदाचार, पशु पालन विद्या, गणित कृषि विज्ञान आदि अनेक अर्थ दर्शाए हैं।

यज् धात्वर्थ-यज् धातु का पहला अर्थ देवपूजा है। देव शब्द का सबसे अधिक प्रयोग परमात्मा के लिए हुआ है। वह प्रकाश आदि का जहां देने वाला है, वहां अपने कार्यों, प्रभावों, गुणों से अनोखा भी है और वही सबसे अधिक पूज्य, मान्य, उपासनीय भी है। अत: सबसे बड़ा, जग को चमकाने, चलाने, देने वाला-देव परमात्मा ही है।

अत: यज्ञ शब्द का एक अर्थ ईश्वर भी है तभी वेद का यह कहना चरितार्थ हो सकता है कि अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि: (अ. 9, 10, 14) इस सारे उत्पन्न हुए/होने वाले प्राकृतिक जगत का नाभि-धारक, पोषक, केन्द्र, मूलस्रोत यह यज्ञ वाच्य ही है। ईश्वर को मानने वाले सभी यह स्वीकार करते हैं कि 'जन्माद्यस्य यत: वेदान्त 1, 1, 2) अर्थात् दुनिया बनाना और बना के चलाना बस उसी का काम है। मूलत: इस मन्त्र में उत्पत्ति के केन्द्र को यज्ञ कहा जा रहा है। बहुत सारे श्रद्धावश इस मन्त्र को अग्निहोत्र नामक यज्ञ अर्थ में लेते हैं, पर यह देवयज्ञ भुवन का नाभि (धारक, पोषक) नहीं हो सकता है। पूर्व प्रतिपादित ईश्वर भी यज्ञ का वाच्य है, इस का पोषक यह विचार भी हो सकता है अर्थात् यज्ञ का एक अर्थ परमात्मा मानने पर ही तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत: य. 31, 7, ऋ. 10, 90, 9 अ. 19, 6, 13 में वेदों का प्रादुर्भाव जिस यज्ञ से कहा है। वह यज्ञ केवल परमात्मा ही हो सकता है, क्योंकि अन्यत्र वेद में तथा अन्य भारतीय साहित्य में वेद को ईश्वरीय ज्ञान के रूप में प्रतिपादित किया गया है, साधा गया है। अत: यज्ञ शब्द का सबसे प्रमुख अर्थ, वाच्य परमात्मा भी है। इसी दृष्टिकोण से यह गाया जाता है-यज्ञ रूप प्रभु हमारे इसके साथ रूप शब्द तुल्य अर्थ में लेने पर अग्निहोत्रात्मक यज्ञ की तरह प्रभु ही सबसे अधिक सुगन्धि, भलाई आदि का कर्त्ता है।

यज्ञ का एक और अर्थ पुरुष, जीव, जीवन भी है। इसलिए उपनिषद के ऋषि ने कहा है-पुरुषो वाव यज्ञ: 3, 16, 1 यहां हमारे पूरे रूप, जीवन को यज्ञ नाम दिया गया है। सत्यार्थ प्रकाश में इस उद्धरण का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं-जो पुरुष अन्न व समय देह और पुरि अर्थात् देह में शमन करने वाला जीवात्मा यज्ञ अर्थात् अतीव शुभ गुणों से संगत और सत्कर्त्तव्य है-

सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु. 3, पृ. 46

जीवन के प्रथम काल वाले को वेद ब्रह्मचारी नाम से पुकारते हैं अर्थात् विद्यार्थी के लिए वेद में ब्रह्मचारी शब्द आया है। यह शब्द बहुत ही स्वारस्यपूर्ण है, क्योंकि इससे जहां उसकी दिनचर्या, जीवनचर्या, साधना का संकेत सामने आता है, वहां उसके जीवन के लक्ष्य का भी निर्देश प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी शब्द ब्रह्म और चारी चर + इन् का मेल है। ब्रह्म शब्द परमात्मा, वेद, वीर्य आदि के अर्थ में आता है, क्योंकि ब्रह्म का सामान्य अर्थ है-बड़ा और परमात्मा जहां प्रत्येक प्रकार से महान है, वहां वेद-ज्ञान भी बड़ी वस्तु है, यतोहि वेद से ही सारे शास्त्रों, ज्ञानों का विकास हुआ है तथा ज्ञान से ही सर्वविध विकास, कार्य, साधना होती है। हमारे द्वारा खाए-पिए का अन्तिम परिपाक वीर्य रूप में होता है और वह शरीर, शक्ति, स्मरण का आधार होने से ब्रह्म कहलाता है। इन तीनों साधनाओं, लक्ष्यों को साधने वाले को वेद ब्रह्मचारी कहता है। जिस की विशेष चर्चा अथर्व के ब्रह्मचर्य सूक्त (12, 5) में है। वैसे अथर्व का नाम ब्रह्म भी है।

अथर्व का प्रथम मन्त्र भी ये त्रिषप्ता: परियन्ति, विश्वानि रूपाणि बिभ्रत:। वाचस्पति वेला तेषां, तन्वो अद्य दधातु मे।। यहां वाचस्पति शब्द वाणी/विद्या के स्वामी के लिए आया है। हां वाणी से ही विद्या देने का कार्य अधिकतर होता है। अत: उसका स्वामी ये जो 3 + 7 या 3 7 हैं, जिनसे सारे रूप वाले रूपान्तिरत होते हैं और जो यत्र-तत्र सर्वत्र विराजमान हैं। उनके बल, तेज, कौशल को वह हमारे अन्दर स्थापित करे। जैसे कि हम देखते हैं-वर्णमाला के अ, इ, क, च आदि वर्णों/अल्फाबैट से सारे शब्द बनते हैं, आकार लेते हैं, साकार, सार्थक होते हैं। जैसे संगीत में सातों स्वरों पर ही सारे राग, गाने गाए जाते हैं।

अथर्व के ब्रह्मचर्य सूक्त (12,5) में आता है कि जैसे माता अपने गर्भ में हर प्रकार का संरक्षण देकर गर्भस्थ के शरीर-इन्द्रिय-अन्त:करण आत्मा और सिर रूपी द्यौ, उदर, सम अन्तरिक्ष तथा पृथिवी सदृशपाद भाग का विकास, परिपाक, परिपोषण करती है। ऐसे ही शिक्षक शिष्यों के व्यवहार में आने वाली ज़रूरत की अधिक से अधिक वस्तु का ज्ञान देता है। जीवन के अंशों का सर्वविध विका, पोषण, संवर्धन करता है। जिससे शिष्य प्रत्येक प्रकार से पुरुष-पूर्ण, मुकम्मल, परफैक्ट बन सके।

विशेष विषय में विशेषज्ञ बनने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों! इस आयु, अवसर के स्वारस्य को सामने रखकर छान्दोग्य उपनिषद के ऋषि ने जीवन की सफलता के मूलमन्त्र को बतलाते हुए कहा है-बलमुपास्व 7, 8, 1 अर्थात् विद्या बल और शरीर बल की साधना के लिए सदा प्रयत्नशील रहो। यह अवस्था स्वाभाविक रूप से स्वास्थ्य संवर्धन और ज्ञान प्राप्ति का स्वर्ण अवसर, सहयोगी सुविधा है। इस साधना में सदा निरत रहना चाहिए। अत: उत्साह, आशा के साथ इसमें ऐसे जुटो कि उसमें कभी चूक न हो।

अभिनन्दन एवं छात्रवृत्ति प्रदान समारोह

मानव सेवा प्रतिष्ठान नई दिल्ली गत 17 वर्षों से विभिन्न गुरुकुलों, विद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाओं के छात्र छात्राओं को छात्रवृत्ति प्रदान करने तथा वैदिक धर्म एवं आर्य समाज के प्रचार प्रसारार्थ जीवनदानी, विद्वान, विदुषियों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का अभिनंदन करने के कार्य में संलग्न है। उसी श्रृंखला में इस वर्ष भी यह अभिनंदन एवं छात्रवृत्ति प्रदान समारोह दिनांक 25 अक्तूबर 2015 को दीनबन्धु छोटुराम भवन केशवपुरम नई दिल्ली में स्वामी प्रणवानंद सरस्वती जी के आशीर्वाद से प्रात: 8.00 बजे से 1.00 बजे सम्पन्न हुआ।

अन्तिम शोक सभा सम्पन्न

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वरिष्ठ उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी आर्य के सबसे छोटे सुपुत्र श्री सुरिन्द्र कुमार काकू का पिछले दिनों निधन हो गया था उनकी अन्तिम शोक सभा दिनांक 17.9.2015 दिन वीरवार को लक्ष्मी नारायण मंदिर माडल हाऊस जालन्धर में दोपहर 1:00 से 2:00 बजे तक हुई। इससे पूर्व प्रात: घर में हवन यज्ञ किया गया और दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की गई। श्रद्धांजलि समारोह में सभी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक नेताओं ने भाग लिया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, उप प्रधान श्री देवेन्द्र नाथ जी शर्मा, उप प्रधान श्री स्वतंत्र कुमार जी, कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, कार्यालयाध्यक्ष श्री जोगिन्द्र सिंह जी और जालन्धर की समस्त आर्य समाजों के आर्य महानुभावों ने इस शोक सभा में आकर दिवंगत आत्मा श्री सुरिन्द्र कुमार काकू को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि श्री सुरेन्द्र पाल काकू का छोटी आयु में चले जाना बहुत दुखदायी है। श्री सुरिन्द्र कुमार काकू जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इन्हें बचपन से ही वैदिक संस्कार विरासत के रूप में मिले थे। श्री सुरिन्द्र कुमार काकू अपने पिता जी के साथ फैक्टरी के कार्यों में हाथ बंटाते थे। इनका इस प्रकार अल्पायु में निधन हो जाने से जहां परिवार को अपूरणीय क्षति हुई है वहीं समाज ने भी एक कर्मठ युवक को खो दिया है। दु:ख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं। इस श्रद्धांजलि समारोह में आर्य समाज नवांशहर से श्री विनोद भारद्वाज जी एवं आर्य समाज के सदस्य आये हुये थे। आर्य समाज बठिंडा से श्री पी.डी.गोयल, श्री गौरी शंकर, आर्य समाज नवांकोट अमृतसर, आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर, आर्य समाज मोगा से भी श्रद्धांजलि समारोह में आर्य जन आए हुये थे। सभी सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने तथा राजनीतिक नेताओं ने श्री सुरिन्द्र कुमार काकू को अपनी श्रद्धांजलि भेंट की और शोक संतप्त परिवार के प्रति संवेदना प्रकट की। शांतिपाठ के साथ श्रद्धांजलि समारोह सम्पन्न हुआ।

कविता

-ले० मधु सहगल अध्यापिका डी. ए. वी. स्कूल नवांशहर

सत्यार्थ प्रकाश सा न कोई ग्रन्थ महान,
रचना की जिसने इसकी वे संत थे महान।
दयानन्द का प्रयोजन था करना सत्य का प्रकाश,
22 जून 1874 को किया शुरू सत्यार्थ प्रकाश।
स्वामी जी की वाणी से निकले 14 समुल्लास,
चन्द्रशेखर जी ने लिखे मन में हर्ष उल्लास।
प्रथम में है ईश्वर के सौ नाम की बात,
शिक्षा जन्म सिद्ध अधिकार की दूसरी करे बात।
तीसरे सम्मुलास में यज्ञ, योग, गुरुकुल के नियम,
देश बनता महान अगर जानो ब्रह्मचर्य का नियम।
चतुर्थ समुल्लास देता गृहस्थाश्रम का ज्ञान,
ब्राह्मण-क्षत्रिय जानो कर्मों को दे मान।
पंचम समुल्लास बताता वानप्रस्थी का मार्ग,
षष्ठम आदर्श राजा बनने का सुझाता मार्ग।
सप्तम लिखता वेदों में है ईश्वर की बात,
अष्टम समुल्लास में है ग्रह उपग्रह की बात।
नवम है विद्या सहयोगी, अविद्या विरोधी,
दशम, व्याख्यान है, जीव हत्या, अंध विश्वास विरोधी।
असत्य को छोड़कर करो सत्य का प्रकाश,
शिक्षा देता है स्वामी जी का सत्यार्थ प्रकाश।

पृष्ठ 4 का शेष-और सूरज.....

प्रचुर मात्रा में सहयोग राशियां अन्न के रूप में, धन के रूप में, जन के रूप में सम्पन्न कर पुण्य के भागी बनो, यज्ञमान बनो, अंशकालिक, पूर्णकालिक सामर्थ्यानुसार यज्ञमान बनकर अपने जीवन में मैं भी दुर्लभ शारद यज्ञ में यजमान बना था। इस गौरवमयी पंक्ति को अंकित करो। ईश्वर सबका कल्याण करेंगे।

यजमानों के लिए कर्त्तव्य व देय

अंशकालिक यजमान 1 पीपा घृत
पूर्णकालिक यजमान 5 पीपे घृत के

शेष दक्षिणा अथवा अन्य प्रकार के सहयोग स्वेच्छा से हृदय की आवाज पर कोई अनिवार्यता नहीं।

समय सारणी

10 से 12 अक्तूबर तक

प्रात: 6 बजे से 9 बजे तक यज्ञ व सत्संग
सायं 4 बजे से 7 बजे तक यज्ञ व सत्संग
12 को सायंकाल यज्ञ की पूर्णाहुति

दुर्लभ शारद यज्ञ

13 अक्तूबर 2015 को प्रात: 6.30 बजे से 14 अक्तूबर 2015 को प्रात: 9 बजे पूर्णाहुति।

उत्साही, उदार चेता व्यक्ति, सामग्री अथवा घृत, दक्षिणा, लंगर इनमें से किसी एक-एक का पूर्ण भार भी वहन कर सकता है। यज्ञ में अवश्य भाग लें, भारी संख्या में भाग लें।

आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना का वेद सप्ताह

आप को यह जानकर हर्ष होगा कि प्रत्येक वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना का वेद सप्ताह 5 अक्तूबर से 11 अक्तूबर 2015 दिन रविवार तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। 5 अक्तूबर से 10 अक्तूबर 2015 तक यज्ञ, भजन एवं प्रवचन प्रात: 7.30 बजे से 9.30 बजे तक होगे। इस वेद सप्ताह में प्रवचन आचार्य रामानन्द जी शिमला के होंगे और मधुर भजन श्री दिनेश दत्त शास्त्री दिल्ली वाले सुनाएंगे। मुख्य समारोह 11 अक्तूबर को प्रात: 8.30 बजे से 12.30 बजे तक होगा। प्रात: 8.30 बजे से 9.30 बजे तक 11 कुण्डीय चतुर्वेद शतक यज्ञ की पूर्ण आहुति होगी। वेद सम्मेलन एवं प्रवचन 9.30 बजे से 12.30 बजे तक होंगे। धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर का अवश्य लाभ उठावें।

श्रावणी तथा श्री कृष्ण जन्माष्टमी

आर्य समाज अबोहर में श्रावणी और श्री कृष्ण जन्माष्टमी पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ मनाया गया। जिसमें सर्वप्रथम वृहद यज्ञ किया गया। इस यज्ञ ब्रह्मा पंडित आर्य मणिलाल आचार्य तथा मुख्य यजमान श्री सोहन लाल सेतिया तथा सहायक यजमान अनेक आर्य भक्त थे।

यज्ञ के पश्चात् भजन और प्रवचन रखा गया। जिसमें यज्ञ के ब्रह्मा ने बताया कि सप्रमाण महाभारत में यह प्रमाणित होता है कि योगिराज श्री कृष्ण कामी और व्यभिचारी नहीं थे, और न ही उनके अनेक पत्नी ही थी। वे तो एक पत्नीव्रती थे। बहन रेणु छोड़ा ने गीता में वर्णित कर्मोपदेश दिए तथा पंडित आशुतोष जी और डा. राधाकृष्णन तथा योगीराज श्री कृष्ण जी के आधार पर शिक्षा के सच्चे स्वरूप और महत्त्व साथ ही गुरु का लक्षण भी बताए।

इस क्रम तथा कार्यक्रम का लाभ उठाने के लिए अनेक ही आर्य भक्त उपस्थित रहे जिनमें कुछ निम्न हैं-राजकुमार खुराना, मुरारीलाल दाबड़ा, सुरेन्द्र कुमार गिल्होत्रा, शशि छाबड़ा, सुशीला सेतिया, राजपाल छोड़ा तथा आर्य पुत्री पाठशाला एवं बी. एल. वैदिक स्कूल के अध्यापकगण तथा आर्य समाज के सदस्यगण उपस्थित रहे। अंत में शांति पाठ तथा प्रसाद वितरण के साथ ही कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

-आर्य समाज अबोहर

वेदवाणी

सब हवियां परमात्मा को पहुंचती हैं

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।
त्वे इद्धूयते हविः।। –ऋ० १।२६।६

विनय–हे देवाधिदेव, एक देव! इस जगत् में दो प्रकार के नियम काम कर रहे हैं। एक शाश्वत्–सनातन नियम हैं जो सब काल और सब देशों में सत्य हैं, सदा लागू हो रहे हैं। दूसरे वे नियम हैं जो भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में ही सत्य हैं, जो स्थानिक हैं, स्वल्पकालिक होते हैं। शाश्वत् नियमों के अनुसार चलने से हे प्रभो! तुम्हारा पूजन होता है और अशाश्वत, अविस्तृत नियमों के अनुसार चलने से केवल उस–उस देव की तृप्ति होती है, उस–उस देव का यजन होता है, परन्तु हे प्रभो! इस परिमित अशाश्वत संसार में रहने वाले हम परिमित अशाश्वत शरीरधारी प्राणी तुम्हारा यजन भी सीधा कैसे कर सकते हैं ? हम तुम्हारा यजन इन देवों द्वारा ही कर पाते हैं। फिर तुम्हारे यजन में और इन देवों के यजन में भेद यह है कि हम जो यज्ञ विस्तृत और सनानत दृष्टि से (भावना से) करते हैं वह तो इन देवों द्वारा तुम्हें पहुंच जाता है और जो यज्ञ परिमित भावना से करते हैं वह इन देवों तक ही पहुंचता है। यदि हम वायु शुद्धि के लिए अग्निहोत्र करते हैं तो यह अग्नि व वायु देवता का यजन है, परन्तु यदि हम यही अग्निहोत्र संसार–चक्र को चलाने में अङ्गभूत बनकर करते हैं तो इस अग्निहोत्र से तुम्हारा यजन होता है। यदि हम विद्या का संग्रह अपने सुख के लिए करते हैं तो यह सरस्वती देवी का यजन है, परन्तु यदि हमारा यह ज्ञान तुम्हारी ही प्राप्ति के प्रयोजन से है तो यह सरस्वती देवी द्वारा तुम्हारा पूजन है। इसी प्रकार अपनी मातृभूमि देवी का पूजन भी केवल स्वदेशोद्धार के लिए या जगत्–हित के लिए दोनों प्रकार का हो सकता है। यहां तक कि यदि हमारे अपने देह की रक्षा, हमारा नित्य का भोजन खाना भी सचमुच तुम्हारे ही लिए है तो यह दिखने वाली देह–पूजा भी असल में तुम्हारा ही यजन है। इसलिए सब बात भाव की है, हवि के प्रकार की है। हम सनातन और विस्तृत भावना से जिस भी किसी देव का यजन करते हैं, उन सब देवों के नाम से दी हुई हमारी हवि तुम्हें ही जा पहुंचती है। तब हमारा लक्ष्य तुम्हारी ओर हो जाता है। अतएव जब हमारा एक–एक कार्य शाश्वत् दृष्टि से, सनातन नियमों के अनुसार होता है तब हमारे कर्म से जिस किसी भी देव की पूजा होती दिखती है, वह सब पूजा असल में तुम्हारे ही चरणों में पहुंच जाती है।

–वैदिक विनय से साभार

आर्य समाज मानसा में श्रीकृष्ण जन्म अष्टमी पर्व

हर साल की तरह इस साल भी आर्य समाज मानसा में दिनांक 05 सितम्बर 2015 को श्रीकृष्ण जन्म अष्टमी पर्व हर्षोल्लास के साथ मनाया गया जिसमें आर्य समाज के सभी सदस्य, आर्य सीनियर सैकेण्डरी स्कूल का समूह स्टाफ व अन्य भद्र जन एवं बच्चे शामिल हुए। प्रात: 8.00 बजे हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। हवन यज्ञ का आयोजन पुरोहित श्री अनिल कुमार शास्त्री द्वारा किया गया। हवन यज्ञ के पश्चात् भजन गायन तथा शुभ सन्देश कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री कृष्ण जी के जीवन वृतान्त एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से सम्बन्धित गीत–संगीत का कार्यक्रम हुआ। अन्त में प्रसाद वितरण किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान लाला निरंजन लाल आर्य जी की अध्यक्षता में श्री सुरेन्द्र गुप्ता जी, श्री सतपाल आहलूवालिया जी, श्री सुरेन्द्र बांसल जी, श्री अमृतपाल बांसल जी, श्री रमेश बांसल जी, श्री नरेश कुमार जी, श्री प्रमोद प्रकाश जी, श्री राधेश्याम जी, श्री सुनील कुमार जी, श्रीमती स्वर्णा रानी, श्रीमती सुनीता बत्ता जी आदि उपस्थित रहे।

–निरंजन लाल प्रधान

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

100 गुरुकुल शताब्दी

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली–6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।